



SEPT—2009

नवगीत में अभिव्यक्त आधुनिक बोध के विविध आयाम



डॉ. (श्रीमती) अनिता गुप्ता

व्याख्याता हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय, कोटा (राज.)

साठोत्तरी नवगीतेतर-हिन्दी कविता में जिन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ उनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय है- आधुनिक बोध की प्रवृत्ति। द्वितीय महायुद्ध, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की निराशाजनक परिस्थितियां, वैज्ञानिक व औद्योगिक क्षेत्र में परिवर्तन से मनुष्य के जीवन व उसके विचारों में आश्चर्यजनक बदलाव आया है। रोजी रोटी और अस्तित्व के लिए संघर्ष करता हुआ व्यक्ति जैसे-जैसे रूप, नाम और व्यक्तित्व-विहीन भीड़ का अंग बनता गया वैसे ही वैसे कोमल मानवीय सम्बन्धों के रेशमी सूत्रों से विच्छिन्न भी होता चला गया। सम्बन्ध विच्छेद की इस भयावह एवं त्रासद परिणति का बोध उसे तब और भी गहन और तीव्रतम मात्रा में हुआ जब उसने दर्पण के सामने खड़ा होकर अपने ही प्रतिबिम्ब को पहचानने से इंकार कर दिया। सम्बन्धविहीन और मानवीकरण की इन्हीं दारुण रूपों को हम आधुनिक बोध के विविध आयाम जैसे- महानगरीय संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, विसंगति बोध, अलगाव, ऊब, घुटन, तनाव, संघर्ष, अविश्वास, संशय, मोहभंग, कुण्ठा के अन्तर्गत देखा जा सकता है। आधुनिक बोध के विविध रूपों के कारण ही नवगीत ने अपेक्षाकृत अपनी आवाज बुलन्द की और जीवन के विविध पक्षों को यथार्थ चित्रित किया।

राधेश्याम शुक्ल के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि "नवगीतों में वन्ध्या पूजाएँ हैं, चौकन्नी संध्यायें और आदमखोर दहशत की चीख है,

अंधी धूप तथ टूटी बैसाखियाँ है, सूर्य के मोच खाए पांव हैं तो बूढ़े धुंधले आसमान में ध्रुव तारे की खोज भी।"⁽¹⁾ इस बिन्दु पर आधुनिकता की प्रक्रिया और भी तीव्र हो जाती है।

महानगरीय संत्रास-डॉ० देवेन्द्र शर्मा 'इन्दु' के शब्दों में "गीत की सापेक्षिक नवता उसे सहज ही नगरों तथा महानगरों से भी जोड़ देती है।"⁽²⁾ परिस्थितिगत दबावों के तहत, धरती के उस खण्ड से दूर, अपने लिए आजीविका की तलाश से गांव से शहर आया हुआ व्यक्ति आज प्रश्नचिन्हों के बीच खड़ा है।

"घिस गए सभी मंसूबे इस जीवन के दफ्तर की सीढ़ी चढ़ते और उतरते खाली दिमाग में भर जाता है कूड़ा, हम नहीं भूख से, खालीपन से डरते।"⁽³⁾

इन शहरों में मानव मूल्य मानों मुद्रा मूल्य हो गए हैं। स्वयं प्रकृति भी महानगरीय परिवेश के रंग में रंग गयी है-

"धूप बड़ी बेशरम यहां की/चांदी की प्यासी है रातें/जीती है अधमरी रोशनी/सुन-सुन कर अधनंगी बातें/सुबहें है चालाक यहां की/शामें हैं नापाक यहां की/दोपहरी मेजों पर फैलती बातें/उपदेश की/यह महान् नगरी है मेरे देश की।"⁽⁴⁾

शहरी जीवन का इससे बड़ा अभिशाप और क्या होगा कि आदमी सिक्कों में बंट गया है। चारों तरफ निष्प्राण सी रेत का फैलाव दिखायी देता है।

गलियां, सड़कें, घर सभी का परिवेश घुटन भरा है-
 'अ - स्पंदित .. अ - स्पंदित ... अ - स्पंदित/यहां
 केवल रेत है/ यहां मक्खन के शरीरों में/संगमरमर
 के नुकीले हृदय सोते हैं/बंद

खिड़की- बंद द्वारे/बंद सब घर-बार/बंद गलियां-बंद
 सड़के/बंद कारोबार/यहां चौराहे दिशाएं लील बैठे
 हैं/यहां कोई कुछ नहीं कहता किसी से/एक पत्थर
 मौन रहता है यहां। '(6) नवगीत कार को महसूस
 होता है कि हर आदमी स्वकेन्द्रित हो गया है। उसे
 लगता है कि बेईमानी, छल, कपट शहर की शिराओं
 में खून बनकर प्रवाहित हो रहा है।

'गहराई शाम लगी गोखरू चुभाने/खींच धूप
 जाल गया, दिवस का मछेरा/फैल गया धुन्धों का
 बाख्दी घेरा/ऐसे में प्राण लगे घुटकर अकुलाने/यादों
 की प्रेतनियां लगी खिलखिलाने।'(6)

औद्योगिकरण से निर्मित इस भयावह परिवेश
 ने हमारी संस्कृति के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा दिया
 है। नारी का एक सुन्दर चित्र-

'पत्नी निकली सुबह/शाम को दफ्तर से लौटी/
 पति की नाइट शिफ्ट/सात दिन में फिर से लौटी/
 लाजो दिल्ली में बसकर/शरमाना भूल गयी।'(7)

यही परिवेश हमारे निषेधात्मक मूल्यों को भी
 प्रश्रय देता है। नगरीय परिस्थितियों ने मनुष्य के
 भीतर संदेह, निराशा, द्वन्द, अनास्था और कहीं-कहीं
 मृत्युबोध तक जागृत कर दिया है। इस भागती
 जिन्दगी का हर एक क्षण एक नयी घुटन और
 टूटन देती है। चन्द्रेश गुप्त का नवगीत इसका
 ज्वलन्त उदाहरण है- 'ऊपर से भरे पूरे/भीतर से
 खाली/जीने की शर्त और ऐसी मजबूरी क्षणजीवी
 लगते हैं/सारे अध्याय/पलभर का परिवर्तन/कितना
 निरुपाय/कथ्यों से भरे पूरे/तथ्यों से खाली/हर कोशिश
 बढ़ गई और अधिक दूरी/स्थापित संज्ञाओं की/उम्र
 चुक गई। टूटे सोपानों की/दृष्टि झुक गई शब्दों से
 भरे-पूरे/अर्थों से खाली/संस्करण नये-नये व्याख्या
 अधूरी।'(8) कितना सच्चा चित्रण है। मूल्य स्थापित
 जो थे, टूट गये अपने खोखले आदर्शों से उद्घाटन
 स्वरूप उन्होंने दृष्टि झुका ली। समाज, साहित्य,
 राजनीति, व्यापार, क्रियाकलाप सभी के लिए तो

इस छोटे से गीत में पूर्ण व्याख्या है। व्यक्ति का
 मूलभूत स्वभाव तो रागात्मक होता है किन्तु
 महानगरीय परिवेश ने उसे पीड़ा दी है। यद्यपि रेत
 के स्वभाव में आर्द्रता होती है किन्तु धूप का
 दृष्टिबोध पीड़ित कर जाता है। डॉ० शंभुनाथ सिंह
 ने अपने नवगीत संग्रह 'जहां दर्द नीला है' में
 महानगरों की विभीषिका व आधुनिक सभ्यता को
 गाली दी है। औद्योगिक समाज की अमानवीयता
 पर क्षोभ प्रकट किया है। मूल्यहीनता की प्रवृत्तियों
 का पर्दाफाश किया है। डॉ० रणवीर दिनेश की
 नवगीत कृति 'प्यास' के 'हिरन' में जीवन की
 असंगतियों भूख, गरीबी, अशिक्षा, निरीहता की
 यथार्थपरक समीक्षा करते हैं तो रिश्तों के समीकरण
 के नवगीत पारिवारिक विघटन, टूटन, संशय,
 अजनबीपन के एहसास का लेखा-जोखा प्रस्तुत
 करते हुए रागात्मक सामंजस्य की मांग करते हैं।
 आधुनिक सभ्यता में हमें सिर्फ चीखें सुनने को मिली
 हैं-

'हमें मिली हैं चीखें सुनने/वाले हैं बहरो/बाहर से
 मुस्कानें लगती/चाँटे भीतर की।'(9)

जब सभ्यता अर्थकेन्द्रित हो जाती है तो जीवन
 के सभी भावुक संदर्भ पथरा लाते हैं, जब ग्राम व
 नगर दोनों स्थानों का जीवन विकृतिग्रस्त हो जाता
 है। ग्राम्य जीवन की निसर्ग, निश्छलता में भी इन
 विकृतियों की सड़ांध अब उठने लगी है-

'रिश्ते बदले/रिश्तों की परिभाषाएँ बदली/झूठे
 सपने, झूठे रिश्ते, झूठे हम/सच से परिचय है/बस
 दुआ-सलाम तक।'(10)

इस प्रकार यांत्रिक जटिलताओं, ग्राम एवं नागरिक
 विकृतियों तथा आपाधापी को परिणाम-स्वरूप बाहर
 व भीतर एक खंडितता का बोध जो आज का
 यथार्थ है। 'व्यस्तता' शीर्षक गीत में वीरेन्द्र मिश्र
 कहते हैं-

'शाम और कहवा घर/बड़े-बड़े शब्दों का थोथा
 विद्रोह/दिन-दिन भर समझौते (स्वार्थों की शृंखला)/
 इससे भी, उससे भी, उससे भी मोह।'(11)

'कितने हैं व्यस्त हम/दर्द नहीं जीते हैं/उसकी
 छाया की ही लेते हैं टांह/श्री

मिलता है/चलते है समय बहुत बीत गया, मोह।^{'(12)}

अकेलापन- अकेलेपन के बोध में रागात्मकता खंडित होती है। डॉ० राजेन्द्र गौतम के नवगीत 'समय की गंध' में - 'चिकनी मछली सी/मुट्ठी में फिसल गयी है पहचाने अब तो अभिनय ही होती है/नकली फकी मुस्कानें/रोमिल सम्बन्धों के तन में/चुभते तीखे वंचक शूल।'^{'(13)} स्नेह संवेदना से शून्य औद्योगिक सभ्यता का स्वार्थी मनुष्य भीड़ में भी अकेलापन महसूस करता है। इस बोध में व्यक्ति अपने आपको एकांकी पाता है-

'कहीं कोई भी नहीं है / सिर्फ पत्ते डौलते है/ कपकपांता है छतों का मौत / मुंडेरों से उभरती है सिसकिया/धरधराती हवाओं के साथ / विचारों में उभरती है सिसकिया'^{'(14)} शहरों में हर चीज का अर्थ बदल जाता है। इंसान बेगानों के जूलूस में खुद को ही भूल जाता है।

अजनबीपन-अजनबीपन अपेक्षाकृत नया बोध है जबकि अकेलेपन का बोध अपेक्षाकृत पुराना है। यद्यपि इन दोनों स्थितियों में हम अपने आपको एकांकी पाते है तथापि "अकेलापन अन्य वस्तुओं, घटनाओं और प्रसंगों को जोड़ने वाला होता है जबकि अजनबीपन अन्य वस्तुओं, घटनाओं और प्रसंगों से मोड़ने और तोड़ने वाला है।"^{'(15)} डॉ० श्याम सुन्दर घोष का यह दृष्टिकोण सही है क्योंकि अजनबीपन के बोध में रागात्मकता का सम्पूर्ण अभाव होता है। नदी, निर्झर, आकाश, तारे सब ओर दृष्टि जाती है जबकि अजनबीपन के बोध के कारण दृष्टि सामने के अपरिचित चेहरों और आकृतियों से टकराकर वापस लौट आती है।^{'(16)}

'जान पहचान सिर्फ नोटों की कि सहानुभूति सिर्फ होठों की दोस्त, यह शहर है या अजायबघर, भीड़ है अजनबी मुखौटों की।'^{'(17)}

परिवेश की भयावह त्रासदी से गीत का जीवन भी घुट जाता है, अपनापन कहीं भी नजर नहीं आता है-

'टीसते है खिड़कियों के / प्रश्न-सूचक चिन्ह / सारी रात / टूटता अपनत्व कुठित / व्योम से

विच्छिन्न / उल्कापात / थक गयी है नब्ज जब संवेदना की / क्या करे कमजोर संजीवन / निवेदन / खोढ़ धूमिल धूप पीता अपनापन।'^{'(18)}

आज के आत्मकेन्द्रित नागरिक जीवन में अर्थहीन कोलाहल तो है, पर इसके साथ ही गहरा सूनापन भी। भीड़े तो है पर अपरिचय को साथ लिए हुए- 'बासी चेहरों पर / चिपकी ताजा मुस्कानें शहरों को सिर गई / गांवों की पहिचानें।'^{'(19)}

'बातों में साजिश, कानाफूसी/विज्ञापन ओढ़े मुस्कानें/परिचय में शर्ते है पर्ते है/ छुईमुई शापि पहिचानें।'^{'(20)} इतना ही नहीं, रिश्ते तो कभी के खत्म हो चुके, कहीं भी पानी नहीं है। इसलिए नवगीतकार अपने गीत के माध्यम से पूछ रहा है- 'झुलस गये रिश्तों के रक्तकमल/ झील और ताल भी सूखे/धूल जमी संवादों की सतहें/ शेष रहे सम्बोधन रूखे/इस प्यासी बस्ती में नीर कहां-चल, अपनी आंखों में जांचें।'^{'(21)} 'कितनी औपचारिक है सिसकियां / कितना रस्मी लगता कहकसा।'^{'(22)}

विसंगति बोध-विसंगतिबोध बोध नवगीतकार की जागरूक चेतना का परिणाम है जो कहीं विद्रोह के रूप में कहीं अस्वीकार, कहीं असंतोष के रूप में व्यक्त हुआ है। लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दों में - 'विसंगतियां संगति के सन्दर्भ से ही उपजती है, यदि संगति की धारणा नहीं है आपसी सम्बन्ध टूटे है, जीवन असंतुलित हुआ है और जीवन में जटिलताएं और तनाव बढ़े हैं तो यह विसंगतिबोध इस पीढ़ी का दृष्टिकोण बन गया है। वर्तमान जीवन की विसंगतियों का एक चित्र-

'हंस शयन करते थे चीलों के / नीड़ में भाषण देते काने, अंधों की / भीड़ में पंख कटे गरुड़ पड़े बन्दीगृह में / विन्ध्याचल पर गाते कुबड़े लंगड़े।'^{'(23)}

पिछले दिनों हमारा राजनैतिक व सामाजिक जीवन जिस रूप में बदला है, उसमें व्यक्ति का प्राप्य उससे छिनता रहा है। न्याय की सांकल खटकाते, खटकाते एड़ियां घिस गयी लेकिन सब व्यर्थ क्योंकि राजनीति की दीमक निर्धारित भाग्य लेख को भी चाट गयी। मीठे आमों पर फलने लगे, हंसों की पांत बगुले आ बैठे, सब अग्निमुखी

मंहगाई में चारों ओर से घिर गये। रीढ़हीन बेलें लहराती रही, जबकि कल्पवृक्ष आंधी में उखड़ गये। सत्य और मिथ्या, लम्पट और संत का पार्थक्य समाप्त हो गया। इस विरुद्ध स्थिति को अभिव्यंजित करते हुए कवि कहता है-

''जब समय देवता ने निर्णय मांगा/उसने संशय की खूटी पर टांगा/ले गए लुटेरे, सोने का आसन /हम रहे जुगाते थोथे आश्वासन/जो रहे लगाते नारे, वे जीते/थक गया हारकर, घायल सन्नाटा।''⁽²⁴⁾

विजय किशोर 'मानव' अपने नवगीत संग्रह 'गाती आग के साथ' में व्यवस्था और समाज की कई त्रासदायी विसंगतियों पर वे मन ही मन व्यथित रहते हैं। आज के महाभारत पर वे कितनी सिहरा देने वाली अभिव्यक्ति करने को विवश हो उठे हैं-

''संधियां सब टूटने वाली/खून से भीगे हुए अखबार/पार्थ जीतेंगे नहीं इस बार।''⁽²⁵⁾

अलगाववादी प्रवृत्ति-अलगाववादी प्रवृत्ति सामाजिक विघटन, दोगलापन, अनौचित्य, भ्रष्टाचार, सर्वग्राही स्वार्थपरता आदि से उत्पन्न हुई है। तीसरे महायुद्ध की संभावना से उत्पन्न भय और संशय, हिरोशिमा पर अणु विस्फोट, भारत पर चीन और पाकिस्तान का आक्रमण, सत्ताधारी और सुविधाजीवी वर्ग का अत्याचार, भ्रष्टाचार और चौथे आम चुनाव के वाद का मोहभंग। इन परिस्थितियों में विवश और निराश मनुष्य ने इस अनास्थावादी जीवन दर्शन को स्वीकारा है। प्यार और आत्मीयता महज एक बेवकूफी बन गई है। हर आदमी एक प्रकार से अजनबीपन का अनुभव करता है। अपने ही घर में अपनी पहचान खो चुके हैं कहीं कातिल-कातिल के दाग धोने के लिए कहता है। यथार्थ स्थिति यह है कि-''ठंडाखून / गरम है नारे / बेच रहे ईमान / लिये कटोरा घूम रहा है / सारा हिन्दुस्तान / सत्यय हां / पीछे चलता है सदा गवाही के / बैसाखी पर / झूल रहा है / इस युग का इंसान।''⁽²⁶⁾

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का नवगीत संग्रह 'पंखकटी महराबे' में कबीर जैसा आक्रोश जितना प्रखर है, बीसवीं शती के यथार्थ भी उतने ही सही रूप में चित्रित है।

''दिव्य दृष्टि पायी है/ हर क्षण की सार्थकता सिर्फ आप जानते/तेजी से घूम रहे वृत्त में/ सिर्फ आप मछली की आंख पहचानते/ हम थे जो सूर्य, पुत्र/दूर चले आए है वंश से/ संस्कृत के श्लोकों में जुड़े हुए टुकड़े है/प्राकृत-अपभ्रंश से।''⁽²⁷⁾

मोहभंग-मोहभंग की करुण स्थितियों के चित्र बड़े मार्मिक व प्रभावशाली है। कवि ने जीवन से जो आशाएं की थी वे सभी अपूर्ण रही। आत्ममुग्धता की रेशमी छलनाएं अन्ततः शेष रही या बच रहा तो छिलके-सा, गुठली सी पछतावा-

''किया नियति ने याचकता का ऐसा छल/हम समर जय होकर भी हो गये विफल/अपने ही मस्तक पर होता विजय तिलक/दिये न होते हमले कवच और कुंडल।''⁽²⁸⁾

मानवीय मूल्यों का विघटन-गुलाबसिंह को लगता है कि समय खंडित सपने एवं समग्र क्रांति की ललक लिये बीत रहा है।

''शीशे के दिल दिमाग वाली/महलों की महरिन-सी/झुगियां/बूटो बन्दूकों के पांव के/अनुशासन पर्वों की लुगिया/सपनों का एक सर्ग/सुलग रहा आंखों में/नाकों में निन्यानवे नरक।''⁽²⁹⁾

इस तरह से नवगीतकारों ने कृत्रिमता, यांत्रिकता, भौतिकता और औपचारिकता का चित्रण अपने गीतों में किया है।

अनास्था और निराशा-आज का मनुष्य अपनी धार्मिक, आध्यात्मिक, अनुभवातीत-जड़ों से कह गया है इसलिए उसे निरर्थकता का बोध हुआ है। वह परास्त हो चुका है। उसके समस्त क्रियाकलाप, अर्थशून्य, निरुद्देश्य और बेकार हो गए हैं। ''खोले तो कौन सी दिशा खोले/इतने सारे सवाल एक साथ/किसको छोड़े, किसका होले।''⁽³⁰⁾

क्योंकि-''शांक्ति हर बोध/दशित प्रतिशोध/संकल्पों के पारों/संशय की डोर।''⁽³¹⁾

संशय-संशय की डोर से बंध हुआ कवि अपने ही द्वन्द में उलझा रह गया है। यही द्विविधा कवि के सृजन संकल्प को शिथिल कर देती है। भ्रष्टाचार के इस युग में योग्य व्यक्ति के पास तो कुछ भी नहीं है और अयोग्य के पास सारी सुविधाएं उपलब्ध

है- हमारी दृष्टि सतह पर है, गहराई पर नहीं। श्रम पर है, सत्य पर नहीं। गांवों, कस्बों, शहरों में बंटा हुआ आदमी अपनी भागदौड़ में गड्ढ-मड्ढ हो गया है। उसी भागदौड़ की मानसिक थकान में वर्तमान की कुंठा और भविष्य का भय उसे और भी भीतर से तोड़ रहा है। इन सभी स्थितियों की भोगी हुई, पहचानी हुई अनुभूति का सहज यथार्थ चित्रण आज नवगीत में अपनी पूरी आंतरिकता व ईमानदारी के साथ हुआ है।

''मोल के थे दिन, मुलाकातें गरम/सामने भर का धरेलूपन/चाय-सी ठंडी हंसी आंखे तराजू/एक टुकड़ा मन।''⁽³³⁾

आज आदमी की तलाश आदमी स्वयं अपने भीतर नहीं कर पा रहा है। सभी अपने भविष्य के प्रति एक अज्ञात भय, शंका लेकर एक ही जगह पर इकट्ठे हो डरावने कुएं में झांकने की चेष्टा कर रहे हैं। नवगीतकारों ने नवगीतों में अन्याय, शोषण, उत्पीड़न एवं छल के प्रति गहरा आक्रोश भरा हुआ

संक्षेप में- आधुनिक बोध के विविध आयामों का सशक्त चित्रण नवगीत में हुआ है। डॉ० देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के शब्दों में कहना चाहेंगा-''नवगीत सपनों के रंग बिरंगी पंख लगाकर तितलियों की तरह मधु संचय करने के लिए कल्पना कुसुमों पर नहीं मंडराता। वह तो सनातन विषपायी यायावर है। समृद्ध संस्कारों और परम्परा की चांदनी महक को अपने प्राणों में रचा बसाकर भी उसने आधुनिकता के धुएं, धूल और कुहासों के साथ आत्मीयता स्थापित की है। महानगरीय तनाव के भीतर जीते हुए भी भीड़-भाड़ के पथरीले शोर में उसकी हर धड़कन में गंगाजमुनी सोनार बांसुरी अपनी पूरी छायात्मकता के साथ बजती रही है। ट्रामों, बसों, ट्रेनों और स्कूटर के घर्घरनाद को स्वायत्त करते हुए उसने अपने आपको एक नयी संगीतात्मक अस्मिता प्रदान की है।''⁽³⁴⁾

सन्दर्भ ग्रन्थ

- (1) राधेश्याम शुक्ल - विविधा, पृ. 18 (2) देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' - आंखों में रेत प्यास, पृ. 9 (3) बालस्वरूप राही - जो नितान्त मेरी है, पृ. 61 (4) रमेश रंजक - किरन के पांव, पृ. 11 (5) ओम प्रभाकर - पुष्पचरित्, पृ. 58-59 (6) बालकृष्ण उपाध्याय - गीत - दिसम्बर, 1956, पृ. 83 (7) जहीर कुरैशी - एक टुकड़ा धूप, पृ. 81 (8) उद्धृत डॉ० ओम प्रकाश अवस्थी - नयी कविता के बाद, पृ. 15 (9) उद्धृत सं. शंभुनाथ सिंह - नवगीत दशक - 3, विजय किशोर मानव 'हमें मिली है चीखें, शीर्षक से, पं. 67 (10) सं. शंभुनाथसिंह-नवगीत दशक-3, जहीर कुरैशी का नवगीत, पृ. 91-96 (11) बालस्वरूप राही - गीत-2 (12) वीरेन्द्र मिश्र - धर्मयुग - 21 अप्रैल, 1968 (गीत:शीर्षक:व्यस्तता) (13) राजेन्द्र गौतम - नवगीत, मई-1987 (14) ओम प्रभाकर - पुष्पचरित-1973, पृ. 57 (15) डॉ० श्यामसुंदर घोष - नवलेखन समस्याएं और संदर्भ, पृ. 40 (16) डॉ० श्यामसुंदर घोष - नवलेखन समस्याएं और संदर्भ, पृ. 44 (17) उद्धृत - चन्द्रसेन विराट्, गीत-1 से (18) रमेश रंजक - गीत विहग उतरा, पृ. 48 (19) नईम - पथराई आंखें, पृ. 90 (20) देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' - पथरीले शोर में, पृ. 28 (21) देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' - पथरीले शोर में, पृ. 30 (22) उद्धृत-सं शंभुनाथ सिंह :नवगीत दशक-1 उमाकांत मालवीय, पृ.90-91 (23) देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' - पंखकटी महाराबें, पृ. 43 (24) उपर्युक्त, पृ. 26 (25) विजय किशोर मानव - गाती आग के साथ, पृ. 51 (26) सं. शंभुनाथ सिंह - नवगीत अर्द्धशती, जगदीश श्रीवास्तव का नवगीत पृ. 101-110 (27) देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' - पंखकटी महाराबें, पृ. 35-36 (28) उपर्युक्त, पृ. 30 (29) अवकाश, जनवरी, 1980 पृ. 31 (30) उद्धृत - सं. चन्द्रदेव सिंह - पांच जोड़ बांसुरी - नीलम सिंह पृ. 152 (31) उद्धृत:लहर दिसम्बर जनवरी, 1967, माधव मणिधर, अलगाव (32) उद्धृत : सं. डॉ० शंभुनाथ सिंह - नवगीत अर्द्धशती, श्रीकृष्ण तिवारी का नवगीत पृ. 262 (33) रमेश रंजक - हरापन नहीं टूटेगा, पृ. 10 (34) सं. शंभुनाथ सिंह - नवगीत दशक-1, पृ. 43 (35) उद्धृत-सं.-चन्द्रदेव सिंह - पांच जोड़ बांसुरी लेख-विद्या निवास मिश्र-नयी कविता, पृ. 189 (36) बालस्वरूप राही - जो नितान्त मेरी है 'सम्बोधन' शीर्षक से।